हिंदुस्तानी सियासत और मुसलमान: 1947 से आज तक का सफ़र और ज़मीनी हक़ीक़त

लेखक: डॉ सैयद नासिर शाह

तमहीद (Introduction)

भारत की आज़ादी और तक़्सीम (partition) का वक़्त सदियों की तारीख़ में एक ऐसा मोड़ था जिसने बर-ए-सग़ीर के मुसलमानों को एक अजीब कशमकश में डाल दिया। 1947 में जब देश आज़ाद हुआ, तो हिंदुस्तान के मुसलमानों ने एक अहम फ़ैसला किया–उन्होंने बंटवारे की आग और नफ़रत के बावजूद अपनी मिट्टी, अपने वतन और यहाँ के सेक्युलर आईन (constitution) पर भरोसा किया।

आज़ादी के बाद से राजनीति में मुसलमानों का किरदार एक सीधी लकीर की तरह नहीं रहा है। यह कुर्बानियों, सियासी उम्मीदों, नाकामियों और अपने हक़ के लिए लगातार जद्दोजेहद की एक लंबी दास्तान है। यह मज़मून इस बात का तज़जिया (analysis) करेगा कि पिछले 75+ सालों में मुसलमानों ने इस जम्हूरी (democratic) निज़ाम को क्या दिया, सियासी जमातों ने उनके वोट का कैसे इस्तेमाल किया, और ज़मीनी सतह पर उनकी मुआशी (आर्थिक) और तालीमी तरक़्क़ी कितनी हुई।

बाब 1: आज़ादी के फ़ौरन बाद का दौर (1947 - 1960s)

1. क़यादत (Leadership) का बोहरान और कांग्रेस पर भरोसा

तक़्सीम के नतीजे में मुसलमानों का एक बड़ा पढ़ा-लिखा तबक़ा, सरकारी अफ़सरान, और सरमायादार (capitalists) पाकिस्तान चले गए। जो पीछे रह गए, उनमें ज़्यादा तर आम लोग, किसान, और दस्तकार (artisans) थे। इस वक़्त सियासी क़यादत का एक बड़ा ख़ला (vacuum) पैदा हो गया था। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, रफ़ी अहमद क़िदवई और डॉ. ज़ाकिर हुसैन, मौलाना हुसैन अहमद मदानी जैसे क़द्दावर रहनुमाओं ने इस नाज़ुक वक़्त में मुसलमानों को हौसला दिया और उन्हें मेन-स्ट्रीम पॉलिटिक्स से जोड़े रखा। उस

वक़्त इंडियन नेशनल कांग्रेस ही एक ऐसी बड़ी सियासी जमात थी जो सेक्युलरिज़्म का परचम बुलंद किए हुए थी। मुसलमानों ने अपने तहफ़्फ़ुज़ (security) और तरक़्क़ी की उम्मीद में अपना पूरा सियासी वज़न कांग्रेस के पलड़े में डाल दिया।

2. आईनी हुक़ूक़ और सियासी फ़ायदे

फ़ायदे की बात की जाए तो सबसे बड़ा फ़ायदा भारत का आईन (Constitution) था। बाबा साहेब अंबेडकर की क़यादत में बनने वाले आईन ने मुसलमानों को बराबरी का हक़ दिया। मज़हबी आज़ादी (Article 25-28), और माइनॉरिटी राइट्स (Article 29-30) के तहत उन्हें अपने तालीमी इदारे (educational institutions) खोलने और अपना कल्चर बचाने की आज़ादी मिली। यह एक ऐसी सियासी जीत थी जिसने आगे चलकर उनके वजूद को महफ़ूज़ रखा।

3. **नुक़सान और नज़र-अंदाज़ी (Neglect)**

लेकिन इस दौर का सबसे बड़ा नुक़सान यह था कि मुसलमान एक "सियासी ग़ुलाम" (political captive) बनने लगे। सियासी जमातों को यह समझ आ गया कि तहफ़्फ़ुज़ के नाम पर मुसलमानों का वोट आसानी से हासिल किया जा सकता है। चुनांचे, उनकी तालीम, उनकी नौकरियों और उनके कारोबार को फ़रोग़ देने के लिए कोई ठोस (concrete) नेशनल पॉलिसी नहीं बनाई गई। मुसलमान सिर्फ सिक्योरिटी और रियासत के वादों पर वोट देते रहे, जबकि उनकी मुआशी हालत धीरे-धीरे ख़राब होती गई।

बाब 2: सियासी उथल-पुथल और जज़्बाती मुद्दे (1970 - 1990 की दहाई)

1970 से लेकर 1990 के दौर को अगर मुसलमानों की राजनीति का सबसे बड़ा "Turning Point" (मोड़) कहा जाए तो ग़लत नहीं होगा। इस दौर में क़ौम के असली मसाइल–जैसे तालीम, रोज़गार और मुआशी तरक़्क़ी–सियासी शोर-शराबे में कहीं खो गए। सियासत जज़्बात और मज़हब के गिर्द घूमने लगी, जिसका सबसे बड़ा ख़ामियाज़ा आम मुसलमान को भुगतना पड़ा।

1. **इमरजेंसी (1975-77) और कांग्रेस से नाराज़गी**

आज़ादी के बाद से मुसलमान आँख बंद करके कांग्रेस को वोट दे रहे थे, लेकिन 1975 की इमरजेंसी ने इस तिलिस्म को तोड़ दिया। 'नसबंदी' (forced sterilization) की मुहिम और दिल्ली के तुर्कमान गेट पर चलने वाले बुलडोज़र ने मुसलमानों के अंदर सख़्त ग़ुस्सा पैदा किया। 1977 के इलेक्शन में मुसलमानों ने पहली बार कांग्रेस के ख़िलाफ़ जा कर जनता पार्टी को वोट दिया। इसने एक बात साबित कर दी कि मुसलमान किसी एक पार्टी के बंधे हुए ग़ुलाम नहीं हैं, अगर उनके साथ ज़्यादती होगी तो वो तख़्ता पलट सकते हैं।

2. **शाह बानो केस (1985): सियासी तुष्टिकरण (Appeasement) का इल्ज़ाम**

1980 की दहाई में मुसलमानों की क़यादत पूरी तरह से मज़हबी रहनुमाओं (clerics) के हाथ में आने लगी। शाह बानो केस में सुप्रीम कोर्ट के गुज़ारे-भत्ते (alimony) के फ़ैसले के ख़िलाफ़ एक बड़ा आंदोलन हुआ। राजीव गांधी की सरकार ने दबाव में आकर आईन में तब्दीली की और Muslim Women (Protection of Rights on Divorce) Act, 1986 पास किया। नुक़सान: हालाँकि उस वक़्त इसको शरीयत की जीत माना गया, लेकिन इसने मुसलमानों को एक अजीब सियासी नुक़सान पहुँचाया। इस क़दम को हिंदू राइट-विंग ने "Minority Appeasement" (तुष्टिकरण) का नाम दिया और इसका फ़ायदा उठा कर दूसरे तबक़े को गोलबंद (polarize) करना शुरू कर दिया।

3. **बाबरी मस्जिद का मसला और ख़ौफ़ की सियासत**

शाह बानो केस के बैकलैश को बैलेंस करने के लिए सरकार ने 1986 में बाबरी मस्जिद के ताले खुलवा दिए, जिसने एक ऐसी आग लगाई जो आज तक महसूस की जाती है। 1989 से लेकर 1992 तक (जब बाबरी मस्जिद शहीद की गई), पूरा मुल्क फ़िरक़ावाराना फ़सादात (communal riots) की आग में जलता रहा। सियासी किरदार का बदलाव: इस दौर में मुसलमानों का सियासी मक़सद तरक़्क़ी करना नहीं, बल्कि सिर्फ़ अपनी "जान और पहचान" बचाना रह गया। वोट बैंक की सियासत अपने उरूज पर थी। सियासी पार्टियाँ अब मुसलमानों को डेवलपमेंट के वादे नहीं करती थीं, बल्कि सिर्फ़ यह डर दिखाती थीं कि "अगर हमें वोट नहीं दिया तो तुम सेफ़ नहीं रहोगे।"

4. मंडल कमिशन (1990) और क्षेत्रीय (Regional) पार्टियों का उरूज

जब वी.पी. सिंह सरकार ने मंडल कमिशन की सिफ़ारिशात लागू कीं और ओबीसी (Other Backward Classes) को रिज़र्वेशन दिया, तो भारत की राजनीति दो हिस्सों में बंट गई: मंडल (Caste) और कमंडल (Religion)। M-Y Factor (Muslim-Yadav Alliance): उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव (समाजवादी पार्टी) और बिहार में लालू प्रसाद यादव (RJD) जैसे नेता उभर कर सामने आए। इन नेताओं ने "मुसलमान और यादव/दलित" का एक नया वोट बैंक बनाया। मुसलमानों ने इन्हें अपना नया मुहाफ़िज़ (protector) मान लिया। फ़ायदा या नुक़सान? इन रीजनल पार्टियों ने फ़सादात (riots) रोके और मुसलमानों को एक तहफ़्फ़ुज़ का एहसास ज़रूर दिया, लेकिन क्या इन्होंने मुसलमानों की मुआशी और तालीमी तरक़्क़ी के लिए कुछ किया? जवाब है: नहीं। मुसलमान इन पार्टियों को जिताते रहे, और बदले में उन्हें सिर्फ़ 'सुरक्षा' मिलती रही, नौकरियाँ या स्कूल नहीं। इस दौर में मुसलमान 'वोट बैंक' तो बन गए, लेकिन 'Policy-makers' नहीं बन सके।

बाब 3: 2000 के बाद का दौर, सच्चर कमिटी और आज की सियासी हक़ीक़त

नए मिलेनियम (2000 की दहाई) का आग़ाज़ मुसलमानों के लिए नई चुनौतियों (challenges) के साथ हुआ। एक तरफ़ आलमी सतह (global level) पर दहशतगर्दी (terrorism) के नाम पर मुसलमानों को शक की निगाह से देखा जाने लगा, और दूसरी तरफ़ मुल्क के अंदर 2002 के गुजरात फ़सादात ने उनके अंदर तहफ़्फ़ुज़ (security) का एक नया ख़ौफ़ पैदा कर दिया। लेकिन इस दौर की सबसे बड़ी सियासी घटना एक रिपोर्ट थी, जिसने मुसलमानों की 'तरक़्क़ी' के सारे झूठे दावों का पर्दा फ़ाश कर दिया।

1. सच्चर कमिटी रिपोर्ट (2006): 'तुष्टिकरण' के झूठ का पर्दा-फ़ाश

सालों से राइट-विंग सियासी जमातें यह इल्ज़ाम लगाती आ रही थीं कि कांग्रेस और दीगर सेक्युलर पार्टियाँ मुसलमानों का 'Appeasement' (तुष्टिकरण या नवाज़ने का काम) कर रही हैं। 2005 में UPA सरकार ने जस्टिस राजिंदर सच्चर की क़यादत में एक कमिटी बनाई ताकि मुसलमानों की समाजी, मुआशी और तालीमी हालत का जायज़ा

लिया जा सके। जब 2006 में यह रिपोर्ट सामने आई, तो मुल्क सख़्ते में आ गया। रिपोर्ट ने हक़ीक़त बयान की:

• तालीम और रोज़गार: मुसलमानों की तालीमी और मुआशी हालत दलितों (SC/ST) से भी ज़्यादा ख़राब है। सरकारी नौकरियों में उनकी हिस्सेदारी सिर्फ़ 4.9% थी (जबकि आबादी 14% थी)। IAS, IPS और IFS में उनकी गिनती 3% से भी कम थी।

• बैंक और मईशत: मुसलमानों को अपना कारोबार शुरू करने के लिए बैंकों से लोन मिलना सबसे मुश्किल था।

• सियासी नतीजा: सच्चर कमिटी ने यह साबित कर दिया कि पिछले 60 सालों में मुसलमानों को सिर्फ़ और सिर्फ़ 'वोट बैंक' की तरह इस्तेमाल किया गया। उन्हें डरा कर वोट तो लिए गए, लेकिन पॉलिसी-मेकिंग, तालीम और रोज़गार में उन्हें बिल्कुल पीछे छोड़ दिया गया। तुष्टिकरण सिर्फ़ एक सियासी झूठ था; ज़मीनी हक़ीक़त में मुसलमान सबसे पिछड़ा तबक़ा बन चुका था।

2. 2014 के बाद का दौर: वोट बैंक की सियासत का ज़वाल (Decline)

2014 के आम इंतख़ाबात (elections) ने भारत की राजनीति को हमेशा के लिए बदल दिया। बीजेपी की वाज़ेह अक्सरियत (absolute majority) के साथ जीत ने एक नया सियासी रिवाज क़ायम किया: मुसलमानों के वोट के बिना भी दिल्ली की गद्दी हासिल की जा सकती है।

• सियासी अहमियत (Political Relevance) में कमी: पहले सेक्युलर पार्टियाँ मुसलमानों को अपनी जीत की चाबी मानती थीं। लेकिन 2014 और उसके बाद 2019, और फिर 2024 में यह साबित हुआ कि हिंदू वोट के गोलबंद (polarize) होने पर मुसलमान वोट का वीटो पावर ख़त्म हो जाता है।

• नुमाइंदगी का बोहरान (Crisis of Representation): आज पार्लियामेंट और रियासती असेंबलीज़ में मुसलमान MPs और MLAs की तादाद अपनी आबादी के तनासुब (proportion) से सबसे निचली सतह पर है। यहाँ तक कि ख़ुद को 'सेक्युलर' कहने वाली पार्टियाँ भी मुसलमानों को टिकट देने से डरती हैं, ताकि उन पर 'मुस्लिम-परस्त' होने का ठप्पा न लग जाए और बहुसंख्यक (majority) वोट उनसे दूर न हो जाए।

3. आज का सवाल: क्या सिर्फ़ इस्तेमाल या कुछ तरक़्क़ी भी?

मेरे मज़मून का सबसे बड़ा सवाल यही है कि आज मुसलमानों के वोट को बस इस्तेमाल किया जा रहा है, या उनकी तरक़्क़ी के लिए कुछ हो भी रहा है?

• Welfare Schemes का असर: आज के दौर में एक बदलाव ज़रूर आया है। सरकारी फ़लाही मंसूबों (welfare schemes) जैसे पीएम आवास योजना, मुफ़्त राशन, उज्ज्वला योजना और आयुष्मान भारत का फ़ायदा मुसलमानों को एक आम नागरिक (citizen) की हैसियत से बराबर मिल रहा है। ज़मीनी सतह पर ग़रीब मुसलमानों को इन स्कीम्स से मुआशी राहत मिली है।

• मख़सूस (Specific) तरक़्क़ी का फ़ुक़दान: लेकिन, माइनॉरिटी अफ़ेयर्स मिनिस्ट्री (Minority Affairs Ministry) के बजट में कटौती (cuts), मौलाना आज़ाद नेशनल फ़ेलोशिप (MANF) का बंद होना और मुसलमानों के लिए मख़सूस एजुकेशनल स्कीम्स का कम होना यह बताता है कि उनकी अलग से क़यादत या मख़सूस तरक़्क़ी सियासी एजेंडे (agenda) से बाहर हो चुकी है।

5. मुसलमानों का बदलता शऊर (The New Awakening)

लेकिन इस सियासी अंधेरे के बीच एक रोशन पहलू भी है। सियासी हाशिये (margin) पर धकेले जाने के बाद, मुसलमान नौजवान और अवाम अब समझ चुके हैं कि सियासी रहबर उन्हें बचाने नहीं आएँगे। आज क़ौम का रुख़ जज़्बाती (emotional) सियासत से हट कर आला तालीम (UPSC, NEET, JEE), अपने नए कारोबार (start-ups) और अपने आईनी हुक़ूक़ (constitutional rights) को समझने की तरफ़ बढ़ रहा है। आज का मुसलमान 'वोट बैंक' बनने के बजाय 'सेल्फ़-रिलायंट' (ख़ुद-मुख़्तार) बनने की जद्दोज़ेहद कर रहा है।

मुस्तक़बिल का रास्ता और निष्कर्ष (The Way Forward and Conclusion)

पिछले 75+ सालों की सियासी तारीख़ और कशमकश का तज़जिया करने के बाद यह बात बिल्कुल वाज़ेह हो जाती है कि सियासत ने मुसलमानों को तहफ़्फ़ुज़ (security) के नाम पर अपने साथ जोड़े तो रखा, लेकिन उनकी हक़ीक़ी तरक़्क़ी के लिए कोई ठोस (concrete) रास्ता नहीं

बनाया। अब सवाल यह पैदा होता है कि आगे का रास्ता क्या है? अगर सियासी जमातें सिर्फ़ वोट बैंक की तरह इस्तेमाल कर रही हैं, तो इस भंवर (whirlpool) से निकलने का तरीक़ा क्या है?

इसका सीधा जवाब है: सियासी मोहताजी से आज़ादी और अपनी मुआशी (economic) और तालीमी ताक़त का क़याम।

1. **तालीम: असल ताक़त और मुस्तक़बिल की बुनियाद**

सियासी ताक़त आती-जाती रहती है, लेकिन तालीमी ताक़त नस्लों को बचा लेती है। सच्चर कमिटी की डरावनी हक़ीक़तों के बाद अब क़ौम के पास ग़फ़लत (ignorance) में जीने का कोई बहाना नहीं बचा है।

• बेटियों की तालीम पर ज़ोर: क़ौम की असली तरक़्क़ी तब ही मुमकिन है जब आला तालीम को पहली तरजीह (priority) बनाया जाए। ख़ास तौर पर अपनी बेटियों की बेहतर स्कूलिंग और आला तालीम पर तवज्जो देना वक़्त की सबसे बड़ी ज़रूरत है। एक पढ़ी-लिखी और ख़ुद-मुख़्तार (independent) औरत पूरी नस्ल की सोच और मुआशी हालत को संवार सकती है।

• आला तालीम और मुक़ाबला (Competitive Exams): जज़्बाती मसाइल पर एहतेजाज (protest) करने के बजाय, मुसलमान नौजवानों का रुख़ UPSC, NEET, JEE, और दीगर सिविल सर्विसेज़ की तरफ़ होना चाहिए। ब्यूरोक्रेसी और पॉलिसी-मेकिंग में शामिल हुए बिना ज़मीनी तब्दीली नहीं आ सकती।

• मख़सूस इदारों का क़याम: नए स्कूल, कॉलेज और कोचिंग सेंटर्स क़ायम करने होंगे, जो वक़्त के आला मेयार (standard) पर खरे उतरते हों।

2. मईशत और कारोबार: ख़ुशहाली की कुंजी

सियासत हमेशा मईशत (economy) के पीछे चलती है। जो क़ौम आर्थिक (economically) तौर पर कमज़ोर होती है, सियासत उसका सिर्फ़ फ़ायदा उठाती है।

• रोज़गार के बजाय रोज़गार-साज़ (Job Creators) बनना: मुसलमान नौजवानों को महज़ नौकरियों पर इन्हिसार (dependence) करने के बजाय अपना कारोबार (business) शुरू करने की तरफ़ रुख़ करना चाहिए। हेल्थकेयर सर्विसेज़, फ़ार्मेसी, और आधुनिक (modern) टेक्नोलॉजी के सेक्टर में नए वेंचर्स शुरू करना क़ौम को मुआशी तौर पर मज़बूत बना सकता है। एक छोटा कारोबार भी अपने साथ कई और लोगों को रोज़गार देता है।

• ज़कात और औक़ाफ़ का सही इस्तेमाल: मुसलमानों के पास ज़कात और वक़्फ़ बोर्ड की शक्ल में करोड़ों का सरमाया (capital) मौजूद है। अगर इस रक़म को सिर्फ़ रस्मी कामों के बजाय, नौजवानों को कारोबार के लिए सीड-फंडिंग देने या आला तालीम के स्कॉलरशिप्स के लिए इस्तेमाल किया जाए, तो मुआशी इंक़िलाब (economic revolution) आ सकता है।

• जदीद (Modern) टेक्नोलॉजी को अपनाना: वक़्त के साथ चलने के लिए टेक-स्टार्टअप्स, सोलर एनर्जी, AI, और नए ज़माने की डिजिटल इकॉनमी का हिस्सा बनना बहुत ज़रूरी है।

3. सियासी शऊर और लोकल क़यादत

• वोट ज़रूर दें, लेकिन आँख बंद करके नहीं। "हमें कौन बचा सकता है" की मानसिकता (mentality) से निकल कर "हमारी तरक़्क़ी का रोडमैप किसके पास है" पर वोट देना शुरू करना होगा।

• म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन, पंचायत, और वार्ड सतह पर पढ़े-लिखे, समझदार और पेशेवर (professionals) लोगों को आगे आना चाहिए ताकि बुनियादी मसाइल (सड़क, पानी, स्कूल, हेल्थ क्लीनिक्स) हल हो सकें।

निष्कर्ष (Conclusion) आज़ादी के बाद से भारत की राजनीति में मुसलमानों का सफ़र उम्मीदों, धोकों, और लगातार जद्दोज़ेहद का सफ़र रहा है। 1947 के बाद जिस सेक्युलर आईन पर उन्होंने भरोसा किया, उसने उन्हें हुक़ूक़ तो दिए, लेकिन सियासी पार्टियों ने उन्हें महज़ एक "वोट बैंक" समझ कर उनका सियासी शोषण (exploitation) किया। शाह बानो केस से लेकर बाबरी मस्जिद तक, मुसलमानों को जज़्बाती मुद्दों में उलझा कर उनकी बुनियादी ज़रूरतों (तालीम, रोज़गार, और मईशत) को ख़ामोशी से छीन लिया गया।

लेकिन आज का वक़्त बदल रहा है। सियासी हाशिये (margin) पर धकेले जाने के बाद, क़ौम एक नए शऊर (awakening) से गुज़र रही है। आज का मुसलमान यह समझ चुका है कि उसका मसीहा कोई नेता नहीं, बल्कि उसकी अपनी तालीम, उसकी मुआशी ताक़त, और आईन में लिखे उसके बुनियादी हुक़ूक़ हैं।

मुस्तक़बिल इस बात पर मुनहसिर (dependent) नहीं है कि कौन सी पार्टी दिल्ली के तख़्त पर बैठती है, बल्कि इस बात पर है कि मुसलमान अपने बच्चों को कितनी आला तालीम दिलवाते हैं और अपने कारोबार को कितना मज़बूत करते हैं। सियासी आज़ादी का असली फ़ायदा तभी हासिल होगा जब क़ौम मुआशी और तालीमी तौर पर आज़ाद और ख़ुद-मुख़्तार होगी। भारत का मुसलमान इस देश की तरक़्क़ी का एक अहम हिस्सा था, है, और हमेशा रहेगा–बस अब उसे अपनी राह ख़ुद तराशनी है।